

जन्म शताब्दी पुस्तकमाला- ८१

देवताओं के वरदान सत्प्रवृत्तियाँ

(प्रवचन)



देवताओं के वरदान— सत्प्रवृत्तियाँ

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

मित्रो ! देवता कौन हो सकता है ? देवता वह होता है, जो देता है, दूसरों को श्रेष्ठ बनाता है। देवता वह नहीं है, जो आप रंग-बिरंगे खिलौने बनाकर लाते हैं। ये किसकी मूर्ति बनाकर लाए ? भैरव जी की बनाकर लाए। भैरव जी का मुँह ऐसा क्यों है ? अरे साहब ! इनका मुँह तो ऐसा ही है। अच्छा ये देवी जी जीभ क्यों निकालती हैं ? ये तो काट खाएँगी। अरे साहब ! ये तो बकरा खाएँगी। धत तेरे की ! अगर ये बकरा काटने वाली हैं, तो हमारे पड़ोस में कसाई रहता है उसमें और इसमें क्या फरक है ? नहीं साहब ! ये तो देवी जी हैं। मांस तो ये भी खाती हैं और वो कसाई भी खाता है, तभी तो मैं इसे कसाई कह रहा हूँ। नहीं

साहब ! ये कसाई नहीं देवी हैं । नहीं बेटे, ऐसी देवी नहीं हो सकती, जो बकरा खाती हो ।

सच्चा अध्यात्म क्या कहता है?

इसलिए मित्रो ! जो आपने रंग-बिरंगे, चित्र-विचित्र खिलौने बनाकर रखे हैं और उन रंग-बिरंगे खिलौनों से अगर आप ये ख्याल करते हैं कि यह देवी हमारा भला करेगी, हमारी अमुक मनोकामना पूरी करेगी, तो हम देवी को ये मिठाई खिलाएँगे, मालपुए खिलाएँगे, तो यह आपकी खामख्याली है । अगर आप ऐसे काम नहीं करना चाहते, तो वहाँ आइए, जहाँ सच्चा अध्यात्म आपकी प्रकृति का उद्धार करता है, आपको आत्मदर्शन कराता है । वहाँ आइए जहाँ अध्यात्म आपके दिमाग की सफाई करता है और यह कहता है कि देववृत्तियाँ, श्रेष्ठ वृत्तियाँ जो संयम के ऊपर टिकी हुई हैं और लोकमंगल के ऊपर टिकी हुई हैं, उनको दो हिस्सों में बाँट सकते हैं । सारी की सारी देवियों और सारे के सारे देवताओं को दो भागों में बाँट सकते हैं । एक वर्ग देवी-देवताओं

का वह है, जो हमारे व्यक्तिगत जीवन पर छाए रहते हैं, जो हमको संयमशील बनाते हैं, श्रमनिष्ठ बनाते हैं, परिष्कृत व्यक्तित्व वाला बनाते हैं, भावनाशील बनाते हैं, संस्कारवान बनाते हैं, साहसी बनाते हैं, इत्यादि। वे हमारे व्यक्तिगत जीवन में सद्गुणों का समावेश करते हैं।

दूसरा वर्ग देवताओं का वह है, जो हमारे व्यवहार को समाज के प्रति उदार बनाता है, उदात्त बनाता है। दूसरों की सेवा करने के लिए, पीड़ा-पतन निवारण करने के लिए, दूसरों को ज्ञान देने और ऊँचा उठाने के लिए, दूसरों को परामर्श देने के लिए हमें प्रेरित करता है। इस तरह हम देवी-देवताओं को दो वर्गों में बाँट सकते हैं। इनमें से एक वे हैं जो हमारे व्यक्तित्व-परिष्कार के लिए खड़े हुए हैं और दूसरे वे हैं, जो उदारता के ऊपर खड़े हुए हैं। ऊपरी तौर से देखने पर वे दो वर्गों में विभक्त दिखते भर हैं, पर वास्तव में वे दोनों हैं एक ही भाग। क्योंकि जब हम अपने आप को

श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं तो हमको बाहर की मदद लेनी पड़ती है। जब हम तैरने की इच्छा करते हैं, तो हमको तालाब में प्रवेश करना पड़ता है। तालाब में प्रवेश किए बिना आपको तैरना नहीं आ सकता। आपको अपना श्रेष्ठ व्यक्तित्व बनाने के लिए लोक-व्यवहार को विनम्र, सुशील और सेवाभावी बनाना आवश्यक है। लोकमंगल के लिए, अपना व्यक्तित्व श्रेष्ठ बनाने के लिए, सेवा के लिए, दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करने के लिए अगर हम तैयार न हों, तो हम अपना व्यक्तिगत जीवन अच्छा बना ही नहीं सकते। वास्तव में यह वर्गीकरण मैंने आपकी सुविधा के लिए और जानकारी के लिए इसलिए किया है, ताकि आप दोनों को आसानी से समझ सकें, अन्यथा वो दोनों एक ही हैं।

मित्रो! देवता के लिए अनुदान देना, देवता के लिए अनुदान प्रस्तुत करना—यही देवोपचार का उद्देश्य है। आप कहीं भी मंदिर में जाते हैं, तो कुछ न कुछ वहाँ चढ़ाते हैं। कुछ भी नहीं है, तो

भी 'पत्रम् पुष्पम् फलम् तोयम्' तो चढ़ाते ही हैं। इसलिए आप यह बात ध्यान रखना कि जब किसी भी देवता के यहाँ जाएँ, तो कुछ भी न मिले तो तुलसी का एक पत्ता जरूर ले जाना। तुलसी का पत्ता न हो तो आप फूल जरूर ले जाना। फूल या पत्ता भी न हो तो ताँबे का एक नया पैसा, एल्युमीनियम-गिलेट का एक पाँच पैसे का सिक्का ही डाल देना। महाराज जी! अगर नहीं डालें तो? तो बेटे देवता नाराज हो जाएँगे और शाप दे देंगे। पंडित जी के यहाँ पत्रा दिखाने जाते हैं, अगर खाली हाथ जाएँगे, तो आपको शाप पड़ेगा। राहु भी नाराज हो जाएगा, चंद्रमा भी नाराज हो जाएगा। पंडित जी! पत्रा देखकर बताइए कि हमारे ग्रह कैसे हैं? ला, पहले पत्रा का पूजन तो कर। अरे पंडित जी! हम तो खाली हाथ आ गए। बेटा खाली हाथ नहीं आते। देवता के सामने खाली हाथ नहीं जाते। देवता के सामने, गुरुजी के पास आते हैं, तो कुछ न कुछ लेकर आते हैं। फूल लाते हैं, केला लाते हैं। नहीं,

महाराज जी! हम तो ऐसे ही चले आए। नहीं बेटे ऐसे नहीं आना चाहिए। कुछ भी लाया कर। फल-फूल कुछ भी लाया कर। हाँ गुरुजी! फूल लाया था। बस, तो ठीक है, काम बन जाएगा। काम बन गया।

देने वाले ही देवता

मित्रो! देने वाले को देवता कहते हैं और देवपूजन के लिए आदमी को देने वाला व्यक्ति बनना पड़ता है, लेने वाला नहीं। देवता किसी से लिया नहीं करते, हर एक की मदद करते हैं। आपको भी देवता की मदद करनी चाहिए। देवता का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए ही देवपूजन किया जाता है। देवपूजन की शिक्षाएँ हैं कि हम अपने जीवन में देवत्व का समावेश करें। हम पशु जीवन से ऊँचे उठें, मनुष्य जीवन से ऊँचे उठें और दैवी जीवन में प्रवेश करें। दैवी वृत्तियों का आह्वान करें और पशु-प्रवृत्तियों का विसर्जन करें। हमारे जीवन में चारों ओर से पशु छाया हुआ है, इंद्रियों पर पशु छाया हुआ

है। हर जगह पशु-प्रवृत्तियाँ छाई हुई हैं। पशु कौन है, जो अपने आप तक सीमित है। पशु में एक ही खराबी है कि वह केवल अपने आप तक सीमित रहता है। वह न समाज की सोचता है, न अपने वर्ग की सोचता है, न देश की सोचता है और न वृत्तियों की सोचता है। केवल अपने पेट की सोचता रहता है और अपनों की सोचता रहता है। इसीलिए तो हम पशु की निंदा करते हैं।

मित्रो! अभी आप वास्तव में नरक के पशु जैसा जीवन जी रहे हैं। अगर कोई आपकी जिंदगी का विश्लेषण करे कि आप क्या हैं, तो जो निष्कर्ष आएगा उसे देखकर आप हैरान रह जाएँगे। चलिए, हम आपको लेबोरेटरी में ले चलते हैं। हम लेब में विश्लेषण करने के पश्चात जो आपकी पैथोलॉजिकल रिपोर्ट तैयार करेंगे, उसमें हम आपको यह 'डिक्लेयर' अर्थात् घोषित कर सकते हैं। बताइए साहब! यह किसकी हड्डी है। ये तो साहब कुत्ते की हड्डी है। नहीं साहब! ये मनुष्य की हड्डी है। मनुष्य की

हड्डी कैसे हो सकती है ? यह कौन बताएगा ? यह बात डॉक्टर अपनी प्रयोगशाला में बताएगा। इसी तरह हम अपनी प्रयोगशाला में ले जाकर कह सकते हैं कि अभी आप इनसान नहीं बन पाए, न देवता बनने की हिम्मत ही जुट रही। अभी आप पशु का जीवन जी रहे हैं। पशु का जीवन, स्वार्थी जीवन, चालाक जीवन, कामनाओं से भरा हुआ जीवन, वासनाओं से भरा हुआ जीवन, तृष्णाओं से भरा हुआ जीवन जी रहे हैं।

मित्रो! अब क्या होना चाहिए ? अब हमारा जीवन एक ही दिशा में बढ़ना चाहिए, देवत्व की दिशा में। देवत्व की दिशा में बढ़ें, तो क्या हो सकता है ? तब बेटे ! हमारा देवपूजन का उद्देश्य पूरा हो सकता है। हम आपको देवपूजन की सारी प्रक्रियाएँ केवल इस मकसद से सिखाते हैं कि आपके भीतर देने की वृत्ति हो जाए, उदारता की वृत्ति पैदा हो जाए, श्रेष्ठता की वृत्ति पैदा हो जाए और आप देवता बनने की कोशिश करें।

देवता व मनुष्य में अंतर

देवता में क्या विशेषता होती है ? देवता और मनुष्य में क्या फरक होता है ? देवता खाते तो रहते हैं, पर पखाना नहीं करते। हनुमान जी को चाहे जितना खाना खिला दो, रोटी खिला दो और दूसरे दिन देखो, कहीं मल विसर्जित किया हुआ नहीं मिलेगा। देवता की एक पहचान तो यही है। देवता अगर मल विसर्जन कर दे तो समझना चाहिए कि वह देवता नहीं है। दूसरी पहचान देवता की यह है कि वे कभी बूढ़े नहीं होते। देवता सदैव जवान रहते हैं। अच्छा बताइए कि भगवान रामचंद्र जी का ऐसा फोटो क्या किसी ने देखा है, जिसमें उनके दाँत उखड़ गए हों और बाल सफेद हो गए हों ? आपने देखा है ? नहीं साहब ! हमने तो नहीं देखा। अच्छा तो कृष्ण भगवान का देखा होगा ? कृष्ण भगवान की जब मृत्यु हुई थी, तब वे एक सौ पच्चीस वर्ष की उम्र के थे। मैं आपसे पूछता हूँ कि एक सौ पच्चीस वर्ष के व्यक्ति के चेहरे पर झुर्री आई होंगी कि नहीं ?

हाँ, महाराज जी ! जरूर आई होंगी । बाल सफेद हुए होंगे या काले ? सफेद हुए होंगे । अच्छा, एकाध दाँत उखड़ा होगा या नहीं ? हाँ साहब ! जरूर उखड़ा होगा । अच्छा, कृष्ण भगवान का एक फोटो हमको दिखाइए । बताइए यह फोटो बुढ़ापे का है या जवानी का । नहीं साहब ! यह बुढ़ापे का नहीं है, जवानी का है । जवानी किसमें रहती है ? देवता में रहती है । देवता जवान होता है । देवता अगर बूढ़े होने लग जाएँ, तो समझना चाहिए कि ये सब बेकार हैं । देवताओं के चेहरे भरे हुए होते हैं । देवता वे होते हैं जिनके चेहरे पर जवानी छाई रहती है, उमंगें छाई रहती हैं, उत्साह छाया रहता है, जीवट छाया रहता है । देवता की पूजा करने के लिए आपकी मनःस्थिति उसी तरह की होनी चाहिए ।

ईमानदारी की बात यह है कि देवी-देवताओं की जितनी भी छवियाँ हैं, वास्तव में ये सब मॉडल हैं । हमको क्या बनना है, इस लक्ष्य को पाने के लिए हम उसी के अनुरूप देवता अर्थात् मॉडल

चुनते हैं। जैसे ताजमहल बनाने के लिए पहले मॉडल बना दिया गया था कि मीनार कितनी बड़ी बनेगी, गेट कैसे बनेगा, अमुक चीज कैसी बनेगी आदि। कागज पर बने नक्शे से उतना साफ नहीं हो पाता, इसलिए हमेशा बहुत बढ़िया इमारतों के लिए 'मॉडल' बनाकर रखते हैं। इसी तरह यदि हम राम की खूबियाँ धारण करना चाहते हैं, तो राम की मूर्ति सामने रखते हैं। हम कृष्ण की उपासना इसलिए करना चाहते हैं कि हम कृष्ण जैसे बनना चाहते हैं। कृष्ण भगवान की खुशामद और चापलूसी करने से क्या हो सकता है? बेटे तू बता तो सही कि कृष्ण जी अपनी खुशामद करने वाले को, चापलूसी करने वाले को या किसी चमचे को अपना चमचा बनाना चाहते हैं क्या? असली यही बात है ना? हाँ गुरुजी! हम तो भगवान का चमचा बनना चाहते हैं। बेटे! चमचे तो उनके होते हैं, किनके? वेश्याओं, नेताओं और राजाओं के, जो कहते हैं कि अरे साहब! आपकी सात पीढ़ियों ने बड़े-बड़े शेर मारे हैं। पाँच

साल बाद आया हूँ, एक शाल तो लूँगा ही। अच्छा ले जा चारण।

मित्रो! आप क्या बनना चाहते हैं? चारण बनना चाहते हैं या चमचे बनना चाहते हैं? क्या आप वेश्याओं के पीछे चमचे बनकर फिरना चाहते हैं? अरे साहब! इनके क्या कहने? इन्होंने तो वहाँ गाया था, नाचा था, बड़े गजब का था। ये श्रीकृष्ण भगवान हैं। देखिए, इनके मुकुट और इनके ये रेशमी कपड़े और बाजूबंद और देखिए इनकी गायें। देखिए इनकी बांसुरी। क्या बनना चाहते हैं आप श्रीकृष्ण भगवान के चमचे। बेटे! चमचा बनने से कोई उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। आपको देवता बनने के लिए उन वृत्तियों को मॉडल के रूप में ग्रहण करना पड़ेगा और अपने आप को ढालने की तैयारी करनी पड़ेगी। आप रामचंद्र जी के उपासक हैं तो रामचंद्र जी बनने की तैयारी कीजिए। कृष्णचंद्र जी बनना चाहते हैं तो आप कृष्णचंद्र जी बनने की तैयारी कीजिए। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

आप हनुमान जी बनना चाहते हैं न? हाँ गुरुजी हमारे इष्ट तो हनुमान जी हैं, तो आप हनुमान जी बनिए हमें क्या शिकायत है? नहीं साहब! हनुमान जी तो हम नहीं बनना चाहते। रहेंगे तो हम वही, जैसे पहले थे और पूजा करेंगे हनुमान जी की। चलेंगे पश्चिम को और देखेंगे पूरब को। वाह बेटे! खोज कर रहा है पूरब की और चलेगा पश्चिम की ओर। अरे! इष्ट का मतलब तो लक्ष्य है। हम क्या बनना चाहते हैं? हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है? आखिर हम क्या बनेंगे? अगर हम यह तय कर लें, तो मित्रो! हमारे भीतर देवता की हस्ती पैदा हो सकती है। देवताओं की संज्ञा में तब आप खड़े होंगे, जब आपके शरीर में से गंदगी पैदा न होती हो। देवता पखाना नहीं करते। उनको पसीना भी नहीं आता। इसको कहते हैं देवता। वे पेशाब भी नहीं करते। अच्छा पानी तो पीते होंगे। हाँ बेटे! शंकर जी को तू पानी चढ़ा सकता है। कितना पानी चढ़ा दूँ? सामर्थ्य भर खूब पानी चढ़ा दे।

महाराज जी ! शंकर जी इतना पानी पिएँगे तो फिर पेशाब तो करेंगे ही । नहीं बेटे ! शंकर जी पानी पीते रहे हैं, खाना खाते रहते हैं, हमारी भावनाओं के रूप में, श्रद्धा के रूप में और हमारे जीवन की दुष्ट-प्रवृत्तियों, पाप आदि का निष्कासन करते रहते हैं ताकि दुष्कर बलाएँ न आएँ।

देवपूजन किसलिए

देवता को इसलिए इष्ट मानते हैं, देवता का पूजन इसलिए करते हैं, देवता की आराधना इसलिए करते हैं कि हमारी देववृत्तियाँ विकसित होती हुई चली जाएँ। देवता की आराधना हम इसलिए करते हैं कि हमारा देवत्व निराशा न लाए। देवत्व कभी निराशा नहीं ला सकता। देवत्व की ओर चलने वाला व्यक्ति निराश नहीं हो सकता। सफलता नहीं मिली, न सही, अगले जन्म में मिलेगी। देवत्व की ओर बढ़ने वाले में क्या ताकत आ गई कि वह कहता है कि अभी नहीं तो अगले जन्म में मिल जाएगी। देवता कभी अपने सत्प्रयत्नों की ओर से निराश नहीं पाया

जा सकता। निराशा माने बुढ़ापा। बुढ़ापा किसे कहते हैं, निराशा को। बुढ़ापा क्या होता है, निराशा। बेटे! शरीर का तो यह धर्म ही है कि वह बूढ़ा होने वाला है। वह बूढ़ा होगा ही, लेकिन शरीर के बूढ़े होने से कोई फरक नहीं पड़ता।

जिन दिनों जर्मनी ने इंग्लैंड के ऊपर हमले किए थे और इंग्लैंड के जीवन-मरण का प्रश्न था, उन दिनों वहाँ का प्रधानमंत्री चर्चिल इतना बूढ़ा हो गया था कि वह पार्लियामेंट की मेज पर वहाँ बैठकर काम नहीं कर सकता था। उसके लिए एक चारपाई बिछा दी गई थी और पार्लियामेंट के मेंबर और दूसरे मिनिस्टर उसके दाएँ-बाएँ बैठते थे और वह करवट लेकर बात करता था, चलता था तो छड़ी लेकर चलता था, बूढ़ा इतना हो गया था कि काम नहीं कर सकता था, लेकिन उसने सारे इंग्लैंड को आश्वासन दिलाया—“हमारे पास खून है और हमारे पास पसीना है। इसलिए इस बड़ी से बड़ी मुसीबत को बरदाश्त करेंगे। इंग्लैंड को कोई गुलाम नहीं बना सकता।

आप लोग खून-पसीना बहाने के लिए तैयार हो जाइए। मैं आपकी आजादी की सुरक्षा करने की गारंटी देता हूँ।” उसने ये वचन तब कहे जब सारे इंग्लैंड के ऊपर जर्मनी का हमला हो रहा था। वह खड़ा हो गया। उसने कहा—“हम जिंदा हैं, इसलिए आप में से हर एक को जिंदा रखेंगे, इंग्लैंड को जिंदा रखेंगे। इंग्लैंड के किसी नागरिक को डरने की आवश्यकता नहीं है।”

मित्रो! ये कौन लोग थे? इनको जवान आदमी कहते हैं। आज जब कम उम्र के व्यक्ति जरा-जरा सी बात पर निराशा की बात करते हैं, निराशा की बात कहते हैं और ये कहते हैं कि साहब! हम तो इम्तिहान में फेल हो गए, हमारा भविष्य अंधकारमय हो गया। अब तो हम कुतुबमीनार से कूदकर मरेंगे। रेलगाड़ी से कटकर मरेंगे। उस तरह की जब कोई खबर हमारे पास आती है कि अरे साहब! कोई लड़का था, मर गया, बड़े दुःख की बात है। मैं कहता हूँ कि बेटे! तू एक गलती सुधार। तू यह मत

कह कि एक लड़का मर गया। तो क्या कहूँ? यों कह कि एक बुढ़ा व्यक्ति मर गया। बुढ़ा कैसे? वह तो लड़का था। नहीं बेटे, वह बुढ़ा था। बुढ़ा आदमी वह है जिसकी उम्मीदें खत्म हो गईं, जीवन खत्म हो गया, जोश खत्म हो गया, उमंगें खत्म हो गईं, आशाएँ खत्म हो गईं, वह आदमी बूढ़ा है। ऐसा आदमी थक जाता है। जो आदमी हार जाता है, जिस आदमी ने हिम्मत गँवा दी, जिस आदमी ने अपने उज्ज्वल भविष्य के सपने गँवा दिए, वह आदमी बूढ़ा हो गया।

साथियो! देवता बूढ़े नहीं हो सकते। देवपूजन के माध्यम से हम देवताओं की आराधना करते हैं, देववृत्तियों की आराधना करते हैं। जब हम शंकर जी की आराधना करते हैं, संघशक्ति की देवी दुर्गा की आराधना करते हैं, पूर्ण पुरुष कृष्ण भगवान की आराधना करते हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की आराधना करते हैं, भक्त शिरोमणि हनुमान की आराधना करते हैं, तो इस माध्यम से उनकी जो श्रेष्ठ

वृत्तियाँ हैं, उनको अपने अंदर धारण करते हैं। नहीं साहब! हनुमान जी हमें रुपया-पैसा दे जाएँ, हमारा ब्याह करा दें। हनुमान जी बेटा दे जाएँ। बेटे! ऐसे कैसे हो सकता है? जिसके यहाँ जो होगा, वही तो देगा। जो चीज है ही नहीं, तो वह कैसे दे देगा? जब हनुमान जी का ब्याह हुआ नहीं, उसके बच्चा हुआ ही नहीं, तो बेटा कैसे दे जाएँगे आपको? गुरुजी हम बीमार हैं, इंजेक्शन लगा दीजिए। बेटे! हम कैसे लगा देंगे? नहीं गुरुजी! आप तो महात्मा हैं, एक इंजेक्शन तो हमारे लगा ही दें। अच्छा आप इंजेक्शन नहीं लगा सकते, तो हमारा दाँत हिलता है, उसे ही उखाड़ दें। बेटे, हमसे तेरा दाँत भी नहीं उखड़ेगा। फिर आप किस बात के गुरु हैं? गुरु हैं तो बेटा हम ज्ञान देंगे, रामायण पढ़ा देंगे, गीता पढ़ा देंगे और दूसरे पाठ पढ़ा देंगे। नहीं साहब! आप तो हमारा दाँत उखाड़ ही दीजिए। बेटे हम कैसे उखाड़ सकते हैं? हमको स्वयं ही नहीं आता। यह क्या है? पागलपन है, अज्ञानता है।

देवताओं के वरदान—सत्प्रवृत्तियाँ

मित्रो! देवता दैवी शक्तियों से भरे हुए, दिव्यतत्त्वों से भरे हुए, दिव्य विचारणाओं से भरे हुए, दिव्य भावनाओं से भरे हुए होते हैं। देवता अगर किसी को वरदान देंगे तो वे मानवता का वरदान देंगे, सद्गुणों का वरदान देंगे, श्रेष्ठता का वरदान देंगे, सत्प्रवृत्तियों का वरदान देंगे। ये सद्गुण और सत्प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं, जिनको हम 'ट्रेवलर्स चेक' कह सकते हैं। इस हुंडी को आप कहीं भी भुना लीजिए। सत्प्रवृत्तियों को लेकर आप बाजार में जाइए और यह कहिए कि हम महात्मा गांधी हैं और हम महात्मा हैं और हमारे महात्मा की कीमत लाइए। जनता आपके ऊपर नोट बरसाना शुरू कर देगी और जब आप मरेंगे तो सौ करोड़ रुपए का आपका स्मारक बना देगी। ये हुंडी है महानता की। आप नहीं खाते तो कोई हर्ज की बात नहीं, आप खिला सकते हैं। ठीक है, हम अपने इस्तेमाल में खरच नहीं कर सकते, लेकिन हम चाहें तो किसी को भी फायदा पहुँचा सकते हैं। चाणक्य ने

असंख्यों को फायदा पहुँचाया। समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी को धनी बना दिया। महात्माओं के वरदान और आशीर्वाद से न जाने क्या-क्या हुए? वे स्वयं लँगोटी पहनते थे, तो कोई हर्ज की बात नहीं थी। देवत्व जब मनुष्य के भीतर आता है, तो महानता के रूप में आता है और महानता वह हुंडी है, जो नरसी मेहता की तरह से हर एक के ऊपर बरस सकती है।

मित्रो! आध्यात्मिकता वो हुंडी है, देवत्व वह हुंडी है और मानवता वह हुंडी है, जिसको भुनाने के लिए सुदामा की तरह से आप कभी भी भगवान के बैंक में जा सकते हैं और अपना पैसा वसूल कर सकते हैं। अगर आपको भौतिक चीजों की जरूरत पड़ जाए, तो भी इससे आप खरीद सकते हैं, लेकिन मैं समझता हूँ कि उसको अपने आपकी संपदा इतनी महान मालूम पड़ती है कि भौतिक वस्तुओं को इकट्ठा करने में कोई आनंद नहीं आता। इसलिए जिसको देवत्व का रस मालूम पड़ जाता है, वह उन चीजों को जो नाशवान हैं, जो कल नहीं रहने वाली हैं, जो केवल चमकदार

मालूम पड़ती हैं, वास्तव में वे चमकदार नहीं हैं, बाहर से वे मृगतृष्णा की तरह मालूम पड़ती हैं और आनंद का कारण नहीं बन सकतीं। ऐसा व्यक्ति जानता है कि भौतिकता हमारे आनंद का कारण नहीं बन सकती, औलाद हमारे आनंद का कारण नहीं बन सकती, वैभव, आर्थिक उन्नति हमारे आनंद का कारण नहीं बन सकती। बेटे ! यह सब मालूम पड़ता है, महसूस होता है, पर असलियत में है नहीं। यदि होता, तो संपन्न आदमी, बेटे वाले आदमी, पैसे वाले आदमी, ताकतवर आदमी—सबके सब ये कहते कि हम तो अपने जीवन में धन्य हुए। हम इस जीवन में सुखयापन करते हैं।

महानता सबसे बड़ा वरदान

मित्रो ! देवत्व वह संपत्ति है जो हमारे जीवन के साथ जुड़ी रहती है और जन्म-जन्मांतरों तक साथ जा सकती है। भौतिक संपत्ति को तो कोई चोर भी ले जा सकता है, अमुक भी ले जा सकता है, इनकम टैक्स वाला भी ले जाता है और मरने के बाद हमारा

बेटा, पोता ले जाता है, लेकिन जो हमारे जीवन को हर क्षण आनंद से सरावोर रखती है और लोक-परलोक तक हमारे साथ चली जाती है, उस दैवी शक्ति, दैवी विभूति, दैवी संपदा का नाम है— 'महानता'। महानता देना देवता का काम है! कोई देवता अगर प्रसन्न होगा तो क्या पैसे देगा? नहीं। तो पैसे के स्थान पर 'चेक' देगा, बैंक ड्राफ्ट भेज देगा? मित्रो! ध्यान रखना! देवता आपको पैसा नहीं देगा। उसका चेक, ड्राफ्ट महानता है। देवता महानता दिया करते हैं। महानता की कीमत पर आदमी संपदाएँ कमा सकता है, यश कमा सकता है, वैभव कमा सकता है। इसलिए देवपूजन में हम अपनी उन वृत्तियों का विकास करते हैं, जो जीवन का लक्ष्य निर्धारित करते हैं। देवपूजन के माध्यम से हम आत्मशोधन का प्रयास करते हैं। ये हमारे प्रत्येक क्रिया-कलाप के माध्यम हैं। आत्मशोधन स्वर्णजयंती वर्ष का भी माध्यम है। अगर आप स्वर्णजयंती वर्ष और दूसरी किसी अन्य उपासना में संलग्न होना

चाहते हैं, तो आपको किसी न किसी रूप में देवपूजन करना पड़ेगा। हिंदू हैं तो भी करना पड़ेगा, निराकारवादी हैं, तो भी करना पड़ेगा। मुसलमान हैं, तो धूपबत्ती जलानी पड़ेगी। ईसाई हैं तो भी आपको मोमबत्ती जलानी पड़ेगी, फूल चढ़ाना पड़ेगा। देवता के सामने श्रद्धांजलि अर्पित करनी पड़ेगी, मस्तक झुकाना पड़ेगा, सिर झुकाना पड़ेगा, श्रद्धा व्यक्त करनी पड़ेगी। देवता के सामने श्रद्धा की अभिव्यक्ति का नाम देवपूजन है।

आत्मशोधन का अर्थ है—अपने आपकी सफाई, अपनी शारीरिक सफाई, मानसिक सफाई, आर्थिक सफाई, व्यवहार की सफाई, पैसे की सफाई, शारीरिक क्रियाओं की सफाई, मानसिक विचारों की सफाई, अगर आप ये सब सफाइयाँ कर सकते हों, तो मैं यकीन दिलाता हूँ कि अध्यात्म के जो पुण्य बताए गए हैं, सिद्धियाँ बताई गई हैं, चमत्कार बताए गए हैं, देवता की कृपा बताई गई है, भगवान का साक्षात्कार बताया गया है, जो कुछ भी आपने उसके माहात्म्य सुने हैं, वे सौ फीसदी सही हैं और जरूर मिल सकते

हैं। मैं फिर कहता हूँ कि नकद धर्म के रूप में वे इसी जन्म में मिल सकते हैं। गवाही के रूप में मैं हमेशा अपने आप को पेश करता रहा हूँ। मैंने सही अध्यात्म पाया है और साथ में सही परिणाम भी। मैं चाहता हूँ कि आप सही अध्यात्म ग्रहण करें, देवपूजन का उद्देश्य समझें, आत्मशोधन का उद्देश्य समझें और नींव भर लें, जिसके ऊपर एक विशालकाय महल बनाया जा सकता है। आज मैंने नींव भरने की प्रक्रिया आपको बताई कि आप किस तरीके से आत्मशोधन और देवपूजन इन दो प्रक्रियाओं के माध्यम से अपने व्यक्तित्व के निर्माण की, अध्यात्म और योगाभ्यास की नींव भर सकते हैं। मैं आपको महल बनाने की विधि आगे कभी बताऊँगा कि आप खिड़की कैसे लगा सकते हैं, किबाड़ कैसे लगा सकते हैं, छत कैसे डाल सकते हैं और शीशे कैसे लगा सकते हैं, इस महल में, जिसको आप बनाना चाहते हैं, आत्मोन्नति का मकान। आज की बात समाप्त।

॥ ॐ शान्तिः ॥



व्यक्तित्व का निर्माण कैसे करें?

यह लोकमान्यता सही नहीं है कि मनुष्य साधना के सहारे आगे बढ़ता और सफल होता है। वास्तविकता यह है कि परिष्कृत व्यक्तित्व ही साधन एकत्रित करता और उनके सदुपयोग का लाभ उठाता है। घटिया व्यक्तित्व अवसर होते हुए भी उसका लाभ नहीं उठा पाता, जबकि प्रतिभावान प्रतिकूलताओं के बीच भी अनुकूलता खोज निकालते हैं और अवसर न होते हुए भी उसे अपने कौशल से उपार्जित करते हैं।

साधन संपन्नों की संपदा का किस प्रकार उपयोग हुआ इस पर दृष्टि दौड़ाने से निराशा होती है। उपार्जन कर सकना सरल है। अनीति पर उतारू व्यक्ति उसे और भी जल्दी समेट लेते हैं। किसके पास कितना है? प्रश्न इस बात का नहीं वरन इस बात का है किसने, किस प्रकार कमाया? ठीक इसी प्रकार का यह भी प्रश्न है कि जो उपलब्ध था उसे किसने किस प्रकार, किन प्रयोजनों में खर्च किया?

साधनों को कमाने, रखने और खरचने के लिए एक विशेष प्रकार की सूझ-बूझ चाहिए। उसे प्रखरता कहते हैं। सूझ-बूझ के अतिरिक्त उसमें पराक्रम भी जुड़ा रहता है। न केवल पराक्रम वरन प्रतिभावान सिद्ध करने वाले गुणों से भी अपने आप को सुसज्जित करना पड़ता है। इसमें प्रामाणिकता और कुशलता दोनों का ही समान समन्वय रहता है। इन दोनों में से एक की भी कमी पड़े तो कठिनाई अड़ जाएगी। प्रामाणिकता रहित व्यवहारकुशल धूर्त कहलाते हैं और बबूले की तरह जहाँ-तहाँ उछलते-डूबते रहते हैं। स्थायित्व के लिए प्रामाणिकता की भी आवश्यकता है। हाँ, यह माना जा सकता है कि केवल प्रामाणिक होने से भी काम नहीं चलता। प्रगति के लिए व्यवहारकुशलता की भी न्यूनाधिक मात्रा में उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी कि प्रामाणिकता की।

व्यक्तित्व का विनिर्मित करना सफलताओं और संपन्नताओं को अर्जित करने के लिए आवश्यक है।

उसकी उपेक्षा करके धूर्तता के सहारे प्रगति करने की बात सोचने वाले कमाते कम और खोते ज्यादा हैं। आत्मसंतोष, लोक-सम्मान गँवाने वाले ईश्वर का कोप भी सहते हैं। ऐसे लोगों के लिए उपार्जन का सदुपयोग करते भी नहीं बन पड़ता। दुरुपयोग से अमृत भी विष बनता है। विलासी अपव्यय और दुर्व्यसन और कुपात्रों को हस्तांतरण यही है, साधनों का दुरुपयोग जिसे व्यक्तित्व रहित व्यक्ति करते देखे गए हैं। वे अपना, उपार्जित वैभव का ही नहीं उनका भी विनाश करते हैं जिसके साथ उनकी मैत्री, घनिष्ठता या अनुकंपा बरसती है। डूबने वाला अकेला ही नहीं पहने हुए कपड़ों को भी साथ ले डूबता है।

व्यक्तित्ववान सही रीति से सही साधन सीमित मात्रा में कमाए, यह हो सकता है, पर जो भी वे कमाते हैं, उसे उनकी दूरदर्शिता इस प्रकार प्रयुक्त करती है, जिसे असंख्यों के लिए आदर्श और अनुकरणीय कहा जा सके। सराहनीय और चिरस्थायी सफलताएँ सदा महामानवों ने ही अर्जित की हैं।

व्यक्तित्ववानों से ही वैभव का सदुपयोग बन पड़ा है। परिश्रम और मनोयोग का समुचित प्रतिफल प्राप्त करने के लिए परिस्थितियों की उतनी आवश्यकता नहीं पड़ती, जितनी परिष्कृत मनःस्थिति की। इसके लिए मनुष्य को आत्मिकी का अवलंबन लेना पड़ता है।

यह शरीर जिसे अज्ञानवश सब कुछ मान लिया गया है, आत्मा का वाहन उपकरण मात्र है। पदार्थों के संपर्क से उपलब्ध होने वाली संवेदनाएँ भी चेतना की सजगता से ही संभव होती हैं। चेतना ही इच्छा, विचारणा और क्रिया के माध्यम से जीवन की विभिन्न गतिविधियों का संचार संचालन करती है। यों जीवित शरीर रहता है, पर जीवनतत्त्व का समस्त आधार चेतना के, आत्मा के साथ जुड़ा हुआ है।

मनुष्यों की काया संरचना में कोई बहुत बड़ा अंतर नहीं होता। मनःसंस्थान भी लगभग एक जैसे होते हैं। साधनों और परिस्थितियों में थोड़ा-बहुत अंतर तो रहता है, पर ये सब भिन्नताएँ ऐसी नहीं हैं, जिनके कारण मनुष्य-मनुष्य के बीच आकाश-

पाताल जैसा अंतर दिखाई पड़े। रुग्ण, अपंगों एवं बाल-वृद्धों की बात छोड़ दें और मध्यवर्ती लोगों की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करें तो विदित होगा कि उनमें से कुछ बुरी तरह पिछड़े हुए, अभावग्रस्त और संक्षोभों में जकड़े हुए दुखित, असंतुष्ट और विपन्न स्थिति में रह रहे हैं। कुछ ऐसे हैं जो न दुखी हैं, न सुखी, न पतित हैं और न समुन्नत। किसी प्रकार यंत्रवत जी रहे हैं। कुछ ऐसे हैं जिमकी प्रतिभा चमकती है। वे ऊँचा सोचते और ऊँचा करते हैं। अपनी साहसिकता के बल पर वे जिधर भी चलते हैं, सफलताएँ छाया की तरह पीछे चलती हैं। स्वयं श्रेय, सम्मान पाते हैं और अपने प्रभावक्षेत्र को समुन्नत बनाने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऐतिहासिक महामानवों की श्रेणी में गिने जाते हैं और दिवंगत हो जाने पर भी अपनी ऐसी अनुकरणीय परंपराएँ छोड़ जाते हैं, जिनका अनुगमन करते हुए चिरकाल तक असंख्य लोग प्रगति-पथ पर अग्रसर होते हैं।

पतित, यांत्रिक और समुन्नत स्तर के मनुष्यों के बीच पाए जाने वाले अंतर का एकमात्र कारण चेतना की स्थिति में भिन्नता होना ही है। प्रयत्न करने पर शरीर और पदार्थ का सुखद संयोग मिलता है और भौतिक स्थिति समृद्ध बनती है। यही प्रयत्न चेतना को सुसंस्कृत बनाने के लिए किया गया होता, तो निश्चय ही वहाँ भी प्रगतिशीलता दृष्टिगोचर होती, बलिष्ठता और संपन्नता का लाभ मिलता। दुर्भाग्य से चेतना के संबंध में नितांत उपेक्षा बरती जाती है, उस पर छाई हुई तमिस्रा को निरस्त करने का प्रयत्न किया गया होता तो स्थिति कुछ दूसरी ही होती। दैन्य, उद्वेग और संताप निश्चित रूप से आंतरिक पिछड़ेपन के ही चिह्न हैं। उसी के कारण ईश्वर के सर्वश्रेष्ठ उपहार—मानव जीवन का लाभ नहीं मिल पाता। जिस शरीर के लिए समस्त जीवधारी तरसते हैं, उसे पाकर भी यदि मनुष्य दयनीय दुर्दशा का अभिशाप सहता है तो उसे परले सिरे का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए।

चेतना का महत्त्व समझा जा सके, उसकी प्रगति और परिष्कृति को जीवन का सच्चा लाभ, उपलब्धियों का आधार और आनंद का उद्गम समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि दूरदर्शिता इसी में है कि आत्मिक प्रगति के उस स्वार्थ-साधन पर ध्यान दिया जाए जिसे परमार्थ कहा जाता है। आंतरिक प्रगति में आत्मिक और भौतिक दोनों ही प्रकार के लाभ मिलते हैं जबकि चेतना को, गई-गुजरी स्थिति में पड़े रहने देने पर, मात्र भौतिक संपन्नता की बात सोचते रहने पर व्यक्तित्व के घटिया रहने के कारण पग-पग पर असफलताएँ ही मिलती हैं और असंतोष, विक्षोभ ही पल्ले बँधता रहता है।

जीवनतत्त्व के स्वरूप और साफल्य पर विचार किया जा सके तो एक ही निष्कर्ष निकलेगा कि सर्वतोमुखी प्रगति और सुस्थिर प्रसन्नता के लिए चेतना को परिष्कृत एवं परिपुष्ट बनाना, भौतिक संपन्नता के लिए की जाने वाली चेष्टाओं से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। उस दिशा में ध्यान देने और

प्रयत्न करने से दोनों लोक सधते हैं जबकि उपेक्षा बरतने से छाया हुआ अंधकार केवल भटकाव ही देता है और ठोकरों पर ठोकरें खाने, रोने-कलपने के लिए एकाकी छोड़ देता है। समझदारी इसी में है कि इस स्थिति का अंत किया जाए। दूरदर्शिता इसी में है कि जीवन-संपदा का श्रेष्ठतम सदुपयोग कर सकने योग्य चेतना का स्तर ऊँचा उठाने में अत्यंत प्रयत्न किया जाए। जिसने ऐसा सोचा और किया, समझना चाहिए कि वह वही जीवनक्षेत्र का सच्चा कलाकार है। इसी कलाकारिता को आत्म-साधना कहते हैं।

